॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

परमहंसपरिव्राजक उपनिषद

विषय सूची

॥अथ परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् ॥ 3
परमहंसपरिव्राजक उपनिषद 5
शान्तिपाठ 18

॥ श्री हरि ॥

॥अथ परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

पारिव्राज्यधर्मवन्तो यज्ज्ञानाद्ब्रह्मतां ययुः ।
तद्ब्रह्म प्रणवैकार्थं तुर्यतुर्यं हरिं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् ॥

परमहंसपरिव्राजक उपनिषद

हरिः ॐ अथ पितामहः स्वपितरमादिनारायणमुपसमेत्य
प्रणम्य पप्रच्छ भगवंस्त्वन्मुखाद्वर्णाश्रमधर्म-
क्रमं सर्वं श्रुतं विदितमवगतम् ।
इदानीं परमहंसपरिव्राजकलक्षणं वेदितुमिच्छामि कः
परिव्रजनाधिकारी कीदृशं परिव्राजकलक्षणं कः
परमहंसः परिव्राजकत्वं कथं तत्सर्वं मे ब्रूहीति । ॥१॥

(एक बार) पितामह (ब्रह्मा) ने अपने पिता आदि नारायण के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके पूछाहे भगवन्! आपके श्रीमुख से सुनकर वर्णाश्रम धर्म का क्रम तो मैंने पूरी तरह जान लिया है। अब मैं परमहंस परिव्राजक के लक्षण जानने की इच्छा रखता हूँ। परिव्रजन का अधिकारी कौन है? परिव्राजक के क्या लक्षण हैं? परमहंस कौन है? परिव्राजकत्व कैसे प्राप्त होता है? यह सब मुझे बताने की कृपा करें। भगवान् आदिनारायण ने कहा-॥१॥

स होवाच भगवानादिनारायणः ।
सद्गुरुसमीपे सकलविद्यापरिश्रमज्ञो भूत्वा विद्वान्सर्व-
मैहिकामुष्मिकसुखश्रमं ज्ञात्वैषणात्रयवासनात्रय-

ममत्वाहङ्कारादिकं वमनान्नमिव हेयमधिगम्य मोक्ष-
मार्गैकसाधनो ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् ।
गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा
वनाद्वा । अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको
वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदिति बुद्ध्वा
सर्वसंसारेषु विरक्तो ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा
पितरं मातरं कलत्रपुत्रमाप्तबन्धुवर्गं तदभावे शिष्यं
सहवासिनं वानुमोदयित्वा तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति
तदु तथा न कुर्यात् । आग्नेय्यामेव कुर्यात् । अग्निर्हि प्राणः
प्राणमेवैतया करोति त्रैधातवीयामेव कुर्यात् ।
एतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति ।
अयं ते योनिरृत्वियो यतो जातो आरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोहाथानो वर्धया रयिमित्यनेन मन्त्रेणाग्नि-
माजिघ्रेत् । एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छस्वा-
हेत्येवमेवैतदाह । ग्रामाच्छ्रोत्रियागारादग्निमाहृत्य स्वविध्युक्तक्रमेण
पूर्ववदग्निमाजिघ्रेत् । यद्यातुरो वाग्निं न विनेदप्सु जुहुयात् ।
आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति
हुत्वोद्धृत्य प्राश्नीयात् साज्यं हविरनामयम् । एष विधिर्वीराध्वाने
वाऽनाशके वा सम्प्रवेशे वाग्निप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वा । यद्यातुरः
स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेदेष पन्थाः। ॥२॥

सद्गुरु के समीप परिश्रमपूर्वक समस्त विद्याओं का ज्ञाता होकर वह विद्वान् इहलौकिक और पारलौकिक सुखों को श्रम स्वरूप (श्रमसाध्य) जानकर एषणात्रय (पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा), वासनात्रय (देह, मन तथा बुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार), ममत्व और अहंकारादि को वमन किए (उगले हुए) अन्न के समान हेय समझ

कर मोक्षपथ के एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य को पूरा करके (अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात्) गृहस्थ बने। गृहस्थ धर्म के पालन के बाद 'वनी' (वानप्रस्थी) बने, तब परिव्राजक संन्यासी बने। (यह सामान्य अनुशासन है) इसके अतिरिक्त विशेष संदर्भो में किसी भी आश्रम-ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से या वानप्रस्थाश्रम से भी प्रव्रज्या में प्रवेश कर सकता है। अतः व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या अस्नातक, अग्निहोत्र करने वाला हो अथवा न हो, जब भी विरक्ति उत्पन्न हो जाए, तभी संन्यास ग्रहण करके परिव्राजक हो जाना चाहिए। संसार से सभी प्रकार से विरक्त ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी अपने माता, पिता, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धुओं और उनके अभाव में शिष्यों अथवा साथ में रहने वालों से सम्मति लेकर प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करते हैं। उन्हें वैसा नहीं करना चाहिए। आग्नेयी इष्टि ही करनी चाहिए। अग्नि ही प्राण है। इसके (अग्नि) द्वारा ही प्राण क्रिया करता है-ऐसा भाव करते हुए त्रैधातवी (इष्टि) करे। सत्त्व,रज और तम ये ही त्रिधातु हैं। इसके पश्चात् इस मंत्र से अग्नि को सँघे' हे अग्निदेव! यह प्राण आपका कारण रूप है, यह जानते हुए आप इसमें प्रवेश करें। आप प्राण से उद्भूत हैं। इसलिए आप हमें प्रकाश और वृद्धि प्रदान करें ।' हे अग्निदेव! आप अपने योनि स्थल (प्राण) में प्रविष्ट हों, अपने उत्पत्ति स्थल में गमन करें।'स्वाहा' इस प्रकार ऐसा कहा गया है। ग्राम के श्रोत्रिय के घर से अग्नि लाकर पूर्वोक्त विधि से अग्नि को सँघे। यदि आतुरतापूर्ण भाव हो और अग्नि उपलब्ध न हो, तो जल में ही हवन करे। आपः' (जल) ही समस्त देवताओं का स्वरूप है 'समस्त देवताओं के निमित्त हवन कर रहा हूँ' ऐसा भाव करते हुए स्वाहा सहित आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् हवन किए हुए पदार्थ को

उठाकर, घृत सहित हवि को ग्रहण (भक्षण) करे। इस विधि का प्रयोग वीर मार्ग में अथवा अनशन द्वारा शरीर छोड़ने के क्रम में अथवा जल प्रवेश में अथवा अग्नि प्रवेश में अथवा महाप्रस्थान में किया जाता है। यदि आतुरता हो, तो मन अथवा वाणी से संन्यास की विधि सम्पन्न कर लेनी चाहिए, यही मार्ग है॥२॥

स्वस्थक्रमेणैव चेदात्मश्राद्धं विरजाहोमं कृत्वाग्निमात्मन्यारोप्य
लौकिकवैदिकसाम्र्थ्यं स्वचतुर्दशकरणप्रवृत्तिं च पुत्रे समारोप्य
तदभावे शिष्ये वा तदभावे स्वात्मन्येव वा ब्रह्मा त्वं
यज्ञस्त्वमित्यभिमन्त्र्य ब्रह्मभावनया ध्यात्वा सावित्रीप्रवेशपूर्वकमप्सु
सर्वविद्यार्थस्वरूपां ब्राह्मण्याधारां वेदमातरं क्रमाद्व्याहृतिषु
त्रिषु प्रविलाप्य व्याहृतित्रयमकारोकारमकारेषु प्रविलाप्य
तत्सावधानेनापः प्राश्य प्रणवेन शिखामुत्कृष्य
यज्ञोपवीतं छित्त्वा वस्त्रमपि भूमौ वाप्सु वा विसृज्य
ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ सुवः स्वाहेत्यनेन
जातरूपधरो भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक्
प्रणवव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया
संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति मन्द्रमध्यमतारध्वनि-
भिस्त्रिवारं त्रिगुणीकृतप्रेषोच्चारणं कृत्वा प्रणवैक-
ध्यानपरायणः सन्नभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यूर्ध्व-
बाहुर्भूत्वा ब्रह्माहमस्मीति तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थस्वरूपा-
नुसन्धानं कुर्वन्नुदीचिं दिशं गच्छेत् । ॥३-क॥

स्वस्थ क्रम से आत्मश्राद्ध एवं विरजा होम (संन्यास ग्रहण के समय किया जाने वाला यज्ञ विशेष) करके अग्नि को आत्मा में आरोपित

करके अपनी लौकिक और वैदिक सामर्थ्य को तथा अपनी चतुर्दशकरण प्रवृत्ति को पुत्र में आरोपित करे। पुत्र के न होने पर शिष्य में और शिष्य के अभाव में अपनी आत्मा में ही आरोपित कर दे। इसके पश्चात् 'ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं' मंत्र का उच्चारण करके, भावनापूर्वक ब्रह्म का ध्यान करके सावित्री में प्रवेश करे। तब अपतत्त्व (जल) में समस्त विद्याओं के अर्थरूप, ब्राह्मण्य की आधाररूपा वेदमाता (गायत्री) को व्याहृतित्रय (भूः, भुवः, स्वः) में विलीन करके इन तीनों व्याहृतियों को अकार, उकार और मकार [अ,उ,म् (ॐ)] में विलीन करे। इसके पश्चात् सावधान होकर जल का पान करे। इसके बाद प्रणव (ॐ) मंत्र का उच्चारण करते हुए शिखा को त्यागकर, यज्ञोपवीत को काटकर, वस्त्रों को भूमि अथवा जल में विसर्जित कर, ॐभूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, इस मन्त्र से जातरूपधर (शिशुवत् निश्छल) होकर अपने स्वरूप का ध्यान करे। फिर पृथक् प्रणव और व्याहृतिपूर्वक मन और वाणी से भी 'मैंने संन्यास लिया, मैंने संन्यास लिया, मैंने संन्यास लिया, ऐसा मन्द्र, मध्य और तार सप्तक की ध्वनि में तीन बार तीन गुना प्रैष मंत्र उच्चारण करके कहे। तत्पश्चात् 'प्रणव' का ध्यान करते हुए समस्त प्राणियों को मैं अभयदान कर रहा हूँ-ऐसा भुजा उठाकर बोले कि 'मैं ब्रह्म हूँ' (अहं ब्रह्मास्मि), 'तुम वही (ब्रह्म) हो' (तत्त्वमसि) आदि और इन्हीं महावाक्यों के अर्थ पर चिन्तन करता हुआ अपने वास्तविक स्वरूप के अनुसंधान हेतु निर्लिप्त होकर उत्तर दिशा में जाकर विचरण करे– यही संन्यास (धर्म) है॥३-क॥

आप तदधिकारी न भवेद्यदि गृहस्थप्रार्थनापूर्वकमभयं
सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्वं प्रवर्तते सखा मा गोपायौजः
सखा योऽसीन्द्रस्य व्रजोऽसि वार्गघ्नः शर्म मे भव यत्पापं
तन्निवारयेत्यनेन मन्त्रेण प्रणवपूर्वकं सलक्षणं वाइणवं
दण्डं कटिसूत्रं कौपीनं कमण्डलुं विवर्णवस्त्रमेकं
परिगृह्य सद्गुरुमुपगम्य नत्वा गुरुमुखात्तत्त्वमसीति
महावाक्यं प्रणवपूर्वकमुपलभ्याथ जीर्णवल्कलाजिनं
धृत्वाथ जलावतरणमूर्ध्वगमनमेकभिक्षां परित्यज्य
त्रिकालस्नानमाचरन्वेदान्तश्रवणपूर्वकं प्रणवानुष्ठानं
कुर्वन्ब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः स्वाभिमतमात्मनि गोपयित्वा
निर्ममोऽध्यात्मनिष्ठः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्य-
दम्भदर्पाहङ्कारासूयागर्वेच्छाद्वेषहर्षामर्षममत्वादींश्च हित्वा
ज्ञानवैराग्ययुक्तो वित्तस्त्रीपराङ्मुखः शुद्धमानसः
सर्वोपनिषदर्थमालोच्य ब्रह्मचर्यापरिग्रहाहिंसासत्यं यत्नेन
रक्षञ्जितेन्द्रियो बहिरन्तःस्नेहवर्जितः शरीरसंधारणार्थं वा त्रिषु
वर्णेष्वभिशस्तपतितवर्जितेषु पशुरद्रोही भैक्ष्यमाणो ब्रह्मभूयाय
भवति। ॥३-ख॥

यदि इस विधि का अधिकारी न हो-अर्थात् दिगम्बर वृत्ति न अपना सके, तो दूसरी विधि कहते हैं। वह गृहस्थ प्रार्थना पूर्वक समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करे। कहे-हे सखा! तुम मेरे बल का रक्षण करो। तुम वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र के वज्र हो, मेरे लिए शान्ति प्रदायक हो, मुझे पापों से मुक्त करो, इस मन्त्र का प्रणवपूर्वक उच्चारण करके, श्रेष्ठ लक्षण युक्त (दोषमुक्त) बाँस के दण्ड, कटिसूत्र, कौपीन, कमण्डलु और एक गेरुआ वस्त्र को धारण करके सद्गुरु

के निकट जाकर उन्हें प्रणाम करे और उन (गुरुदेव) से प्रणवपूर्वक 'तत्त्वमसि' महावाक्य को प्राप्त करे (श्रवण करे)। इसके उपरान्त जीर्ण वल्कल अथवा मृगचर्म धारण करके जल में उतरना, ऊपर चढ़ना तथा एक ही (घर की) भिक्षा का परित्याग करके (अर्थात् कई घरों से थोड़ीथोड़ी भिक्षा लेकर), त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न और सायं) स्नान के नियम का आचरण करते हुए वेदान्त दर्शन का श्रवण और प्रणव (ॐकार) का अनुष्ठान सम्पन्न करे। ब्रह्म मार्ग में विस्तृत (सम्यक्) ज्ञान प्राप्त करके, अपने मत (भावनाओं) को आत्मा (मन) में छिपाकर रखते हुए अपने को ममतारहित और अध्यात्मनिष्ठ बनाए । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, दम्भ, दर्प, अहंकार, असूया, गर्व, इच्छा, द्वेष, हर्ष, अमर्ष, ममत्व आदि का परित्याग करके, ज्ञान वैराग्य से युक्त होकर, कञ्चन और कामिनी से पराङ्मुख होकर, शुद्ध मन से समस्त उपनिषदों की समालोचना करके ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य आदि की यत्नपूर्वक रक्षा करते हुए जितेन्द्रिय बने। बाह्याभ्यन्तर से रागरहित होकर शरीर रक्षण के लिए चारों वर्षों में पतितों (अनुशासनों से गिरे हुओं) को छोड़कर किसी वर्ण के सदाचारी गृहस्थों से भी उसी प्रकार निर्वैर होकर भिक्षा ग्रहण कर ले, जैसे पशु बिना भेद-भाव के आहार ग्रहण करता है। ऐसा करने वाला सबमें ब्रह्म भाव रखता है॥३-ख॥

सर्वेषु कालेषु लाभालाभौ समौ कृत्वा परपात्रमधूकरे-
णान्नमश्नन्भेदोवृद्धिमकुर्वन्कृशीभूत्वा ब्रह्माहमस्मीति
भावयन्गुर्वर्थं ग्राममुपेत्य ध्रुवशीलोऽष्टौ मास्येकाकी

चरेद्वावेवाचरेत् । यदालंबुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत् । ग्राम एकरात्रं तीर्थे त्रिरात्रं पत्तने पञ्चरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रमनिकेतः स्थिरमतिरनग्निसेवी निर्विकारो नियमानियाममुत्सृज्य प्राणसन्धारणार्थमयमेव लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृत्त्या भैक्षमाचरन्नुदकस्थलकमण्डलुर्-रबाधकरहस्यस्थलवासो न पुनर्लाभालाभरतः शुभाशुभ-कर्मनिर्मूलनपरः सर्वत्र भूतलशयनः क्षौरकर्मपरित्यक्तो युक्तचातुर्मास्यव्रतनियमः शुक्लध्यानपरायणोऽर्थस्त्रीपुर-पराङ्मुखोऽनुन्मत्तोऽप्युन्मत्तवदाचरन्नव्यक्तलिङ्गोऽलिङ्गोऽव्य-क्ताचारो दिवानक्तसमत्वेनास्वप्नः स्वरूपानुसन्धानब्रह्म-प्रणवध्यानमार्गेणावहितः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसपरिव्राजको भवति ।

समस्त कालों में लाभ-हानि को समान मानता हुआ हाथ (करपात्र) में ही अल्प भिक्षा ग्रहण करे। शरीर मोटा न करके कृशकाय होकर, मैं ब्रह्म हैं, ऐसा भाव करते हुए आठ महीने तक गुरु के निमित्त अडिग होकर भिक्षाशील होकर एकाकी विचरण करे। जब सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाए, तब कुटीचक अथवा बहूदक अथवा हंस अथवा परमहंस होकर मंत्रपूर्वक कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड और कमण्डलु आदि सभी को जल में विसर्जित करके जातरूपधर (शिशुवत् निर्लिप्त) होकर विचरण करे। (विचरण के अन्तराल में) ग्राम में एक रात्रि, तीर्थ में तीन रात्रि, नगर में पाँच रात्रि और क्षेत्र में सात रात्रि तक निवास करता हुआ वह अनिकेत (घर रहित), स्थिर बुद्धि, निरग्निसेवी (अग्नि का सेवन न करने वाला), निर्विकार, नियम-अनियम का

परित्याग करने वाला, लाभ और हानि को समान समझने वाला, मात्र प्राण धारण के लिए गोवृत्ति से भिक्षा ग्रहण करने वाला हो। जलस्थल (जलाशय) को ही वह कमण्डलु माने और अबाध (बाधा रहित एकान्त) स्थान में ही रहे। लाभ-हानि के विचार में रत न हो, सर्वत्र भूतल पर शयन करे, क्षौर कर्म (हजामत का कार्य) त्याग दे। चातुर्मास्य आदि व्रतों के नियमों से मुक्त रहे और मात्र शुक्ल (सात्त्विक) ध्यान परायण रहे। धन-सम्पदा, स्त्री और नगर से पराङ्मुख रहे और ज्ञान-सम्पन्न होने पर भी प्रत्यक्षतः उन्मत्त की तरह रहे। अपने लिङ्ग और आचार को अव्यक्त रहने दे। दिन और रात्रि को समान भाव से देखने के कारण वह सदैव अस्वप्न अर्थात् जाग्रत्-अवस्था में ही रहे। अस्तु, जो निज स्वरूप के अनुसंधान और प्रणव के ध्यान में रत रहकर संन्यास पथ के द्वारा देह का परित्याग करता है, वह परमहंस परिव्राजक होता है॥३-ग॥

भगवन् ब्रह्मप्रणवः कीदृश इति ब्रह्मा पृच्छति ।
स होवाच नारायणः । ब्रह्मप्रणवः षोडशमात्रात्मकः सोऽवस्थाचतुष्टय चतुष्टयगोचरः । जाग्रदवस्थायां जाग्रदादिचरस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादिचतस्रोवस्थाः सुषुप्तौ सुषुप्त्यादिचतस्रोऽवस्थातुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्था भवन्तीति । जाग्रदवस्थायां विश्वस्य चातुर्विध्यं विश्वविश्वो विश्वतैजसो विश्वप्राज्ञो विश्वतुरीय इति ।
स्वप्नावस्थायां तैजसस्य चातुर्विध्यं
तैजसविश्वस्तैजसतैजसस्तैजसप्राज्ञस्तैजसतुरीय इति ।
सुषुप्त्यवस्थायां प्राज्ञस्य चातुर्विध्यं प्राज्ञविश्वः प्राज्ञतैजसः प्राज्ञप्राज्ञः प्राज्ञतुरीय इति। तुरीयावस्थायां तुरीयस्य चातुर्विध्यं तुरीयविश्वस्तुरीयतैजसस्तुरीयप्राज्ञस्तुतुरीयतुरीय इति ।

ते क्रमेण षोडशमात्रा रूढाः अकारे जाग्रद्विश्व उकारे
जाग्रत्तैजसो मकारे जाग्रत्प्राज्ञ अर्धमात्रायां जाग्रत्तुरीयो
बिन्दौ स्वप्नविश्वोनादे स्वप्नतैजसः कलायां स्वप्नप्राज्ञः
कलातीते स्वप्नतुरीयः शान्तौ सुषुप्तविश्वः शान्त्यातीते
सुषुप्ततैजस उन्मन्यां सुषुप्तप्राज्ञो मनोन्मन्यां
सुषुप्ततुरीयः पुर्यां तुरीयविश्वो मध्यमायां तुरीयतैजसः
पश्यन्तां तुरीयप्राज्ञः परायां तुरीयतुरीयः ।
जाग्रन्मात्राचतुष्टयमकारांशं स्वप्नमात्राचतुष्टयमुकारांशं
सुषुप्तिमात्राचतुष्टयं मकारांशं तुरीयमात्राचतुष्टयमर्धमात्रांशम् ।
अयमेव ब्रह्मप्रणवः । स परमहंसतुरीयातीतावधूतैरुपास्यः ।
तेनैव ब्रह्म प्रकाशते तेन विदेहमुक्तिः । ॥४॥

ब्रह्मा जी ने (आदि पिता नारायण से) आगे प्रश्न किया-हे भगवन्! ब्रह्म प्रणव कैसा होता है? आदिनारायण ने कहा-ब्रह्म प्रणव षोडशमात्रात्मक होता है। चारों अवस्थाओं में प्रत्येक की चार-चार स्थितियों के संयोग से इनकी संख्या सोलह हो जाती है। जाग्रत् अवस्था में जाग्रत् आदि चारों (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय) अवस्थाएँ, स्वप्नावस्था में स्वप्न आदि चारों (स्वप्न, जाग्रत्, सुषुप्ति, तुरीय) अवस्थाएँ, सुषुप्तावस्था में सुषुप्ति आदि चारों (सुषुप्ति, जाग्रत्, स्वप्न, तुरीय) अवस्थाएँ तथा तुरीयावस्था में तुरीय आदि चारों (तुरीय, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) अवस्थाएँ रहती हैं। व्यष्टि जाग्रत् अवस्था में विश्व के चार स्वरूप होते हैं, विश्व-विश्व, विश्व तैजस, विश्व प्राज्ञ और विश्व तुरीय । व्यष्टि स्वप्नावस्था में तैजस के चार रूप होते हैं-तैजस विश्व, तैजसतैजस, तैजस प्राज्ञ और तैजस तुरीय। इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था में प्राज्ञ चार प्रकार के होते हैं-प्राज्ञ विश्व, प्राज्ञ तैजस, प्राज्ञ-

प्राज्ञ और प्राज्ञ तुरीय। तुरीयावस्था में तुरीय के भी चार प्रकार होते हैं-तुरीय विश्व, तुरीय तैजस, तुरीय-तुरीय और तुरीय प्राज्ञ। इस प्रकार यह (ब्रह्म प्रणव) षोडशमात्रारूढ़ रहता है। अकार में जाग्रत् विश्व, उकार में जाग्रत् तैजस और मकार में जाग्रत् प्राज्ञ होता है। अर्धमात्रा में जाग्रत् तुरीय, बिन्दु में स्वप्न विश्व, नाद में स्वप्न तैजस, कला में स्वप्न प्राज्ञ और कलातीत में स्वप्न तुरीय होता है। शान्ति में सुषुप्त विश्व, शान्ति अतीत में सुषुप्त तैजस, उन्मनी अवस्था में सुषुप्त-प्राज्ञ और मनोन्मनी अवस्था में सुषुप्त तुरीय होता है। तुर्या (वैखरी) में तुरीय विश्व, मध्यमा में तुरीय तैजस, पश्यन्ती में तुरीय प्राज्ञ और परा में तुरीय-तुरीय होता है। (प्रणव ॐ के) जाग्रत् अवस्था की चार मात्राएँ अकार अंश की, स्वप्नावस्था की चार मात्राएँ उकार अंश की, सुषुप्ति अवस्था की चार मात्राएँ मकार अंश की और तुरीयावस्था की चार मात्राएँ अर्धमात्रा के अंश की हैं। यही ब्रह्म प्रणव है। यह (ब्रह्मप्रणव) ही परमहंस तुरीयातीत अवधूतों द्वारा उपास्य है। इसी के द्वारा ब्रह्म प्रकाशित होता है। इसी से विदेह मुक्ति प्राप्त होती है॥४॥

भगवन् कथमयज्ञोपवीत्यशिखी सर्वकर्मपरित्यक्तः कथं ब्रह्मनिष्ठापरः कथं ब्राह्मण इति ब्रह्मा पृच्छति । स होवाच विष्णुर्भोभोऽर्भक यस्यास्त्यद्वैतमात्मज्ञानं तदेव यज्ञोपवीतम् । तस्य ध्याननिष्ठैव शिखा । तत्कर्म स पवित्रम् । स सर्वकर्मकृत् । स ब्राह्मणः । स ब्रह्मनिष्ठापरः । स देवः । स ऋषिः । स तपस्वी । स श्रेष्ठः ।स एव सर्वज्येष्ठः । स एव जगद्गुरुः । स एवाहं विद्धि । लोके परमहंसपरिव्राजको दुर्लभतरो यद्येकोऽस्ति । स एव नित्यपूतः । स एव वेदपुरुषो महापुरुषो यस्तच्चित्तं

मय्येवावतिष्ठते । अहं च तस्मिन्नेवावस्थितः । स एव नित्यतृप्तः । स शीतोष्णसुखदुःखमानावमानवर्जितः । स निन्दामर्षसहिष्णुः । स षडूर्मिवर्जितः । षड्भावविकारशून्यः । स ज्येष्ठाज्येष्ठव्यवधानरहितः । स स्वव्यतिरेकेण नान्यद्रष्टा । आशाम्बरो ननमस्कारो न स्वाहाकारो न स्वधाकारश्च नविसर्जनपरो निन्दास्तुति-व्यतिरिक्तो नमन्त्रतन्त्रोपासको देवान्तरध्यानशून्यो लक्ष्यालक्ष्यनिवर्तकः सर्वोपरतः ससच्चिदानन्दाद्वय-चिद्घनः सम्पूर्णानन्दैकबोधो ब्रह्मैवाहममीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवानुसन्धानेन यः कृतकृत्यो भवति स ह परमहंसपरिव्राडित्युपनिषत् ॥

ब्रह्मा ने पुनः प्रश्न किया-हे भगवन्! अयज्ञोपवीती, अशिखी एवं समस्त कर्मों का परित्याग कर देने । वाला ब्रह्मनिष्ठ परायण ब्राह्मण कैसे हो सकता है? भगवान् विष्णु ने कहा- अद्वैतरूप आत्मज्ञान ही जिसका यज्ञोपवीत है और ध्यान निष्ठा.ही जिसकी शिखा है, वह अपने सत्कर्म से पवित्र हो जाता है। सम्पूर्ण कर्मों को वह कर चुका है। वह ब्राह्मण है, वह ब्रह्मनिष्ठ परायण है, वह देव है, वह ऋषि है, वह तपस्वी है, वह श्रेष्ठ है, सर्वज्येष्ठ एवं जगद्गुरु है, वह मैं ही हूँ, ऐसा जानना चाहिए। इस लोक में परमहंस परिव्राजक दुर्लभ है। यदि कोई एकाध (परमहंस) होता है, तो वह नित्यपावन और वेद पुरुष है। वह महापुरुष जिसका चित्त मुझमें ही अवस्थित रहता है, मैं उसमें अवस्थित रहता हूँ। वही नित्य तृप्त होता है। वह सर्दी-गर्मी, मान-अपमान और सुख-दुःख से रहित होता है। वह निन्दा और क्रोध को सहन कर लेने वाला होता है तथा षड्ऊर्मियों से रहित होता है। वह षड्भाव विकारों से शून्य होता है। उसकी दृष्टि में बड़े-छोटे का कोई

भेद नहीं रहता अर्थात् वह सबके प्रति समान दृष्टि रखता है। वह (सर्वत्र) अपने आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। दिशाएँ ही उसके वस्त्र हैं। वह नमस्कार, स्वाहाकार, स्वधाकार और विसर्जन कुछ भी नहीं करता है। वह निन्दा-स्तुति से परे होता है। वह मन्त्र-तन्त्र की उपासना भी नहीं करता। वह किसी अन्य देव का भी ध्यान नहीं करता। वह लक्ष्य-अलक्ष्य से रहित होता है। वह सभी से उपरत रहता है। वह सच्चिदानन्द, अद्वैत, चिह्न और सम्पूर्ण आनन्द के बोधवाला 'मैं ब्रह्म हूँ'-ऐसी अनवरत भावना रखने वाला है। जो ब्रह्म प्रणव के अनुसंधान से कृतकृत्य हो जाता है, उसे ही परमहंस परिव्राजक कहते हैं, ऐसा इस उपनिषद् का मत है॥५॥

॥ श्री हरि ॥

शान्तिपाठ

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु
तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूंगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ परमहंसपरिव्राजकउपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥